समाधि और साधन विधान

ओम तत्सदात्मने नमः

समाधि के नाम पर, कुछ लोग कई तरह के स्वांग दिखाते हैं, समाज में। गड्ढे में बैठ जाते हैं–24 घंटे, 48 घंटे–ऐसा भी होता है। लेकिन जहां तक समाधि की बात है,यह तरीका अच्छा नहीं माना जायगा। अभ्यास के द्वारा, प्राणायाम किया जा सकता है– श्वासा को रोका जा सकता है। लेकिन जिस श्वासा को हमने रोका–एक घंटे, दो घंटे, दस घंटे, एक रोज, दो रोज, चार रोज, साल भर, आखिर फिर तो वह श्वासा चलेगी ही। इसलिए उसका वैल्यू (मूल्य) तो कुछ नहीं है। फिर हमें वहीं आना पड़ेगा। इसलिए ऐच्छिक समाधि जो करता है, तो वह नष्टप्राय हो जाता है। मेरे विचार से समाधि का अर्थ सम के आधीन होना है। इसलिए हम जो समत्व को बार–बार बताते हैं। बार–बार आकाश की ओर निहारते हैं। आकाश का नाम बार–बार लेते हैं। उदाहरण देते हैं, कि ऐसे हम बने। सम के आदी हो जायं। सम, आदी स समाधि। उसको समाधि कहते हैं। वह कई किस्म की होती है। न्यूनतम होती है फिर उससे कुछ ऊँचे दर्जे की होती है। पातंजल योग दर्शन में भी आया है– सविकल्प समाधि, निर्विकल्प समाधि इस तरह से कई समाधि होती हैं। तो समाधि का अर्थ थोड़ा भेद करके, कई तरह से दिया गया है। लेकिन मेरे विचार से जो हम लोगों ने समझा है उसके हिसाब से, समत्व के आधीन हम बन जायं–सम के आदी हो जायं। और वह आदत फिर छूटे न। (समत्व में स्थित रहे), और उसी में हम टंगे रहें। यह जो समाधि है, वही सबसे श्रेष्ठ होती है–और उसमें जब हम दृढ़ हो जांय तो सब समाधियाँ दिख जाती हैं।

ऐसे ढंग से इस स्तर में जब साधक पहुँचता है, और उसमें उसकी रहनी हो जाती है, समत्व को प्राप्त कर लिया तो चाहे हो निम्न श्रेणी की, उसको समाधि मिल जाया करती है। फिर सविकल्प, फिर निर्विकल्प, फिर कैवल्य, अनेक समाधियों का वहाँ उद्‌गमन होता जाता है। वहाँ ऐसा नहीं है कि बैठ जाया जाय, और फिर समाधि लगाई जाय। यह तो साधना में जैसे–जैसे आप आगे बढ़ते जायेंगे। और जो कोष्ठक हैं शरीर के, अवस्थाओं के, उनको प्राप्त करते जायेंगे, वैसे–वैसे ये समाधि देते जायेंगे, देते जायेंगे। इस प्रकार से हम सम के आदी बन गए। हम अमुक स्थिति के आदी बन गए। यह डिग्री मिल गई–यह डिग्री मिल गई। आखीर में फिर कैवल्य है। बीज, सबीज ये सब आती हैं। ये करने वाले नहीं, ये लिखने वाले लिखते हैं। और एक होती है–विदेह समाधि। विदेह समाधि, और जीवनमुक्त ये भी दोनों

समाधि हैं। पुस्तकों में तुम कहीं भी पढ़ो, विदेह मुक्त को ऊंची डिग्री दी गयी है और जीवनमुक्त को नीची डिग्री। और प्रैक्टिकल में ऐसा नहीं है। प्रैक्टिकल में उसका ढंग है कि एक अवस्था आती है–जब स्पीड में साधक आगे बढ़ता है, उसमें शरीर का ध्यान नहीं रहता। उस अवस्था को कहते हैं–विदेह समाधि। और फिर जब वह अवस्था जीत ली गई। खा रहे हैं, खाने के संस्कार नहीं पड़ते, हाथ हिल रहा है, हिलने के संस्कार नहीं बनते। बोल रहे हैं–बोलने के संस्कार नहीं बनते। जब यह अवस्था आ जाती है। जीवन के जितने भी क्रिया कलाप हैं साथ–साथ चल रहे हैं, और फिर भी मुक्त हैं, यह सबसे ऊँची डिग्री है। आखिरी–

'जीवनन्मुक्त ब्रह्म पर,'

जीवन भी है, मुक्त भी हैं।

बिनु पग चलै सुनै बिनु काना।
कर बिनु कर्म करै विधि नाना।

तो प्रैक्टिकल में यह दिखाई पड़ता है। थ्योरिटिकल में इसे कम दर्जे का दिखाया गया है, विदेह अवस्था को आगे दिखाया गया हैं इसलिए स्वयं करे, तब पता लगता है।

इसलिए स्पीड भरो। भूख न लगे, प्यास न लगे। आप ऐसा कह सकते हो, जैसे नशा हो गया है–ईश्वर का। और जब तक वह न मिले, तब तक हम पागल हैं। यह बहुत दिन नहीं चलता। एक अवस्था होती है। और स्पीड से इसे प्राप्त कर लिया जाता है। और जहाँ यह प्राप्त हुई तहाँ–

'सुखी सिराने नेम'

फिर सारे नियम शान्त हो जाते हैं। फिर जो जीवन है, वह समर्पित हो चुका है। उसका न रह गया, भगवान का हो जाता है। और मुक्त की डिग्री मिल गयी, भगवान ने दे दी है। भगवान के कार्य सब उनके शरीर से होने लगते हैं–दूसरे हो नहीं सकते। उनके विचार बदल चुके, जीवात्मा बदल कर विष्णु बन चुकी है। इस तरह से उनका सब बदल जाता है, ईश्वर के गुण धर्म आ जाते हैं। जीव के गुण धर्म समाप्त हो जाते हैं। ऐसी जो अवस्था है–उसे जीवन मुक्त कहते हैं। उसे समाधि कहो, या अवस्था कहो या रहनी कहो। वह सबसे ऊंची मानी जाती है। तो इस तरह से समाधि का मतलब, मेरे विचार से, सम के आदी होना है। तो आप सब लोगों से मेरा कहना यह है कि पढ़ो, और करने में ज़्यादा समय दो, और उससे तय करो। एक तरीका है– इसे समझने का। प्रयास किया जाय, कि हमारे अंदर जो समझ आई

है, उसका एक खाका खड़ा हो जाय। हमारी समझ के अनुसार- यह ऐसे-ऐसे होना चाहिए। जब हम पुस्तक पढ़ें तो-उसमे अपनी समझ के अनुरूप खाका तैयार कर लें। तो ऐसा होगा कि तुम्हें परम संतोष आ जायेगा। सबसे बड़ी बात है, कि पुस्तकों में मतभेद जो मिले, तो उसे अपने अंतर्मन में लाकर, अपनी समझ के साथ एडजस्टिंग कर लेना चाहिए। हमारी अपनी एडजस्टिंग है-इन सबसे भी थोड़ा-थोड़ा सहारा मिल गया। और गुरु के वचनों से भी मिल गया। और जब सबको अपनी समझ के साथ एडजस्टिंग कर देंगे, तो वह अच्छा माना जायगा। और उससे कल्याण होगा। इस तरह से जो समाधि का अर्थ है वह सम के आदी से लेना चाहिए। समत्व में रहने की आदत। समत्व की रहनी। यह है-समाधि।

पांतलज योगदर्शन में दिखाया गया है कि ऐसे क्रम से उसमें क्रियाएं होती हैं- समाधि पाद, साधन पाद, विभूतिपाद और कैवल्य पाद। ऐसा है। कैवल्य पाद सबसे अंत में है। कैवल्य एण्ड (अंत) है।कैवल्य पद, कैवल्य समाधि सुप्रीम डिग्री है। ये सब योगी की अनुभूतियां हैं। इसके पहले विभूतिपाद होता है। विभूतिपाद में ये सब विभूतियाँ आती हैं, योग्यताएं आती हैं, डिग्रियाँ आती हैं। टाइटल आते हैं। क्या-क्या, विभूतियाँ हैं, सब आएंगी। और उसके पहले साधन, और उसके पहले समाधि। तो यहाँ यह प्रश्न होता है कि समाधि पहले कैसे आ गई? इसे तो सबसे बाद में आना चाहिए। लेकिन समाधि न आएगी, तो ये जो डिग्रियाँ हमें मिलने वाली हैं, ये मिलेंगी ही नहीं। समाधि मतलब सम के आदी-हम तभी बन सकते हैं, जब ये बाधाएं जो लगी हैं-दूर हो जायें। जो ये कल्पनाएं बनती हैं इच्छाएं बनती हैं-दूर हो जायें।

'एक ब्याधि बस नर मरै, ये असाधि बहु ब्याधि।
संतत पीडहिं जीव कहं, सो किमि लहै समाधि।।'

जब इच्छा नहीं रहेगी, तो समत्व आएगा। कंपन न रहे, तो सम हो। कंपन है, इच्छा। इच्छा बन्द हो गई, तो फिर साधन शुरु हो गया। और अगर इच्छा बंद नहीं हुई, तो साधन नहीं माना जायगा। साधन के हिसाब से नहीं माना जायगा-वैसे तो भगवान भावप्रिय होते हैं। तो भाव अनुसार होता ही है। लेकिन जब हमारे (मन में) तरंग न उठे। तरंग इच्छा है। इच्छा न उठे। और गलतियों की माफी हो जाती है। लेकिन इच्छा मूल कारण है। खराबी का मूल है। इसलिए बड़े-बड़े संतों ने यही कहा है कि-

"इच्छइ काया इच्छइ माया, इच्छइ जग उपजाया।"

इसलिए कामना रहित होना है। इसके बिना भक्ति होती ही नहीं।

होइ अकाम जो हरि पद सेइहि।

भगति मोरि तेहि शंकर देइहि।।

कामना मन में होती है। तो मन ही मूल है सबका।अब जो भी डिग्री सुशोभित करेगा, तो यह मन ही तो बताएगा कि अब मैं यहाँ पहुँच गया। और जब नीचे चला जायगा, तो भी मन ही बातएगा। इसलिए अगर यह कह दिया जाय कि मन ही हर चीज़ कार्यान्वित करेगा तो गलत नहीं होगा। हाँ यह बदलता चला जायेगा। लेबल में आएगा तो दूसरा रूप होगा। आखिर में जाएगा तो दूसरा रूप होगा। चाहे ऐसे कह दो। चाहे ऐसे कह दो, कि जब भगवान के पास पहुँच जायगा, तो खतम हो जायेगा। इस प्रकार कुछ भी कह लो। तो सब दारोमदार मन के ऊपर है। अगर यह नहीं सुधरता, तो चाहे उल्टे टंगे रहें-जैसे गोस्वामी जी कहते हैं-

"तरुकोटर महं बसै विहंग, तरु काटिय मरै न जैसे।

साधन करिय विचार हीन, मन शुद्ध होय नहिं तैसे।।"

अगर कोई पोला पेड़ है, और उसमें सर्प घुस गया, तो पेड़ काटने से वह नहीं मरेगा। तो इस शरीर को जला दे। काट डाले, तो भगवान थोड़े मिलेंगे। वह मन तो मरेगा नहीं।

अगर विचार नहीं किया जाता, साधना की सही लाइन अगर नहीं पकड़ी जाती, तब फिर यह मनकैसे शुद्ध होगा? तो इसे शुद्ध करने का तरीका है। ध्यान से सुनो।

एक सेठ थे। गांव के रहने वाले थे। बहुत धनी हो गए तो चले गए कलकत्ता, बम्बई। विलायत चले गए, अमेरिका चले गए। तमाम कारखाने-कारखाने, बहुत बड़ा बिजनेस बढ़ गया। तो सेठ की आदत थी, कभी कभी गांव में जाने की ऐसे ही गर्मियों में निकल जाय, कभी घूमने। गांव पहुँचे, तो वहां रहे दो-चार रोज। एक दिन सेठ जब गांव के बाहर, मैदान गए। शाम को थोड़ा अंधेरा हो रहा था। जब लौटने लगे, तो एक पीपल के पेड़ से आवाज आयी-सेठ हमे नौकर रखोगे। तो सेठ ने सोचा कौन है। सेठ लोगों को, पैसा वालों को, डर बहुत लगता है। तो सेठ बढ़ा कुछ दूर, डर के मारे। जब लम्बा कदम रखा, तो फिर आवाज आई-सेठ डरो नहीं। तो सेठ रुका, और पूछा कि तुम कौन हो। उसने कहा मैं भूत हूँ। भूत सुना तो और डर गया। भूत बड़ा भयानक होता है लोगों में। तो फिर कदम बढ़ाया। तो फिर कहा, अरे रुको- रुको भाई। सेठ ने कहा, आखिर तुम क्या कहना चाहते हो। उसने कहा, मैं तुम्हारे यहां नौकरी करना चाहता हूँ। पूछा क्या नौकरी करोगे? तो कहा सब काम करूँगा, दिन रात चौबीस घंटे काम करने वाला हूँ। सेठ ने कहा, तनखा क्या लोगे?

उसने कहा मुझे तनखा नहीं चाहिए। मेरे शरीर ही नहीं तो खाना-कपड़ा क्या करना है? तो फिर क्या लोगे? भूत ने कहा, कुछ नहीं लूँगा। लेकिन शर्त यह है, कि अगर तुम मुझे काम नहीं बताओगे, तो मैं तुम्हें खा डालूंगा। सेठ ने सोचा, जब हमारे पास इतने कारखाने हैं, इतना काम है, तो यह क्यों खालेगा। काम से फुरसत ही न पाएगा। कितना काम करेगा। लाखों आदमियों के बराबर भी करेगा, तो मेरे पास काम है। तो सेठ ने कहा अच्छा ठीक है। चलो, लगो काम में। वह आ गया। पूछा-काम बताइए। सेठ ने बताया, उस कारखाने में जाओ-यह काम करके आओ। इधर उसने कहा नहीं, कि उसने किया नहीं। फट करके आ गया। तब सेठ ने दूसरा बताया, तीसरा काम बताया। वह एक सेकेण्ड में करके आ जाय। और कहे कि, काम बताओ, नहीं तो मैं तुम्हें खाता हूँ। तो सेठ परेशान हो गया। बीमार हो गया। बहुत बुरी हालत हो गई। इतने में एक महात्मा सन्यासी, वहाँ से जा रहे थे। सेठ ने सोचा, हो सकता है, यह महात्मा कुछ युक्ति बतावें। तो दौड़ के गए। उनके गोड़े गिरे और सब वृतान्त शुरू से बता दिया। तो महात्मा ने कहा, अच्छा तुम उस भूत को यहॉ मेरे पास बुला सकते हो? बोला हॉ। तो कहा बुलाओ उसे। सेठ ने बुलाया-भूत यहाँ आओ-आ गया। तो महात्मा ने कहा अच्छा जाओ एक बांस ले आओ-बांस यहाँ गाड़ दो। गाड़ दिया। महात्मा ने कहा-भूत इस बांस में चढ़ो और उतरो। और सेठ से कहा जाओ अब अपनी सेठानी के पास जाओ, और शुद्ध घी के पराठे खाओ और मस्त रहो। अब तुम्हारे पास यह नहीं आएगा। और जब तुम्हारे पास काम हो, तो इससे काम कराओ, और फिर कह दो-जाओ, चढ़ो-उतरो। बस चढ़ता-उतरता रहेगा। तो यह एक उदाहरण है। यह सेठ जो है, साधक है। और यह मन भूत है। मनुष्य ने इसको अनादि काल से रख लिया है। तो यह इतनी गति वाला है, इतनी इसकी स्पीड है, कि इसकी स्पीड में यह सेठ रूपी शरीर व्यर्थ खतम हुआ चला जा रहा है। इस मरज को छुड़ाने के लिए अगर कोई सतगुरु रूपी सन्यासी मिल जाय, और बता दें, कि बांस गाड़ दो। जो सब में बसा हुआ है, वह श्वांसा। श्वांसा का बांस गाड़ दे। और मन रूपी भूत को इसी में चढ़ाए और उतारे। चढ़ाए और उतारे।

'निरंजन माला घट में फिरै दिन रात।''

बस इस निरंजन माला में रा-म, रा-म, जपा करे। अब भूत को सेठ के पास न आना पड़ेगा। और जब सेठ को ज़रूरत हो बुला-ले जाप बंद करो-यह काम करो। सेवा करो। फिर लगा दो। इस प्रकार अगर यह मन रूपी भूत, और ये जो सबमें बसा हुआ है यह बासुदेव रूपी श्वांसा, अगर गुरु से समझ ले। और इस मन रूपी

भूत को इसी में लगा दे। तो साधक रूपी सेठ का, इस भूत के जाल से हमेशा के लिए बचाव हो सकता है।

जब हम श्वासा का जाप करेंगे। तब हम जान सकेंगे कि श्वासा जाप में नहीं आती तब श्वासा का काम क्या है? और जब श्वासा को हम, जाप में लेते हैं-और जाप के द्वारा श्वासा को अर्जित या अनुशासित कर लेते हैं, तब श्वासा क्या करती है? श्वासा और संकल्प में क्या अंतर है? किस जगह से संकल्प, श्वासा में ओत-प्रोत होकर बाहर आते हैं। और किस समय, श्वांस के साथ निकल जाते हैं-यह सब जानकारी जाप के द्वारा-अजपा, पश्यंती, परा, अनहद-इनके जाप से, पता चलता है। और अगर दूसरे ने इसका रिसर्च किया है, दूसरे ने इसको जपा है-वह जब बताएगा, तो उसकी गतिविधि, दूसरे के यहाँ फिट (ठीक) नहीं बैठेगी-इसका भी फर्क आ जाता है। क्यों आएगा, क्योंकि इस दुनिया की पीठ पर करीब पांच छः अरब आदमी हैं। करीब-करीब सब एक जैसे हैं-सबके अन्दर वही आत्मा है, सबके शरीर लगभग एक जैसे हैं। कुछ प्राकृतिक (भौगोलिक) कारणों से, कुछ लोग गोरे हो जाते हैं। खान-पान, भाषा-बोली में अंतर आ सकता हैं, लेकिन प्राण एक से हैं-प्राणों में चेतन का प्रतिबिम्ब जीवात्मा का है-तो इसमें कोई अन्तर नहीं है। इसलिए मूल वस्तु तो एक ही है। लेकिन मूल वस्तु को, इस शरीर में, कार्यरूप में परिणत करने पर, अन्तर आ जाता है। जैसे एक ही माता-पिता से चार भाई पैदा हुए, तो चारों के शरीर एक जैसे नहीं होते-कुछ न कुछ अंतर होता है। जब 6 फुट के शरीर में अन्तर होता है, तो यह तो अन्तःकरण है। चार अंतःकरण हैं। मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार हैं। फिर उनके कार्य रूप में परिणत करने के लिये 10 इंद्रियाँ हैं। इन सबमें बहुत अंतर आ जाता है। इसलिए रुचि अलग बनी रहती है। और रुचि के अनुसार क्रिया बनती है।

देखिये, हम उदाहरण देकर बतायें। जैसे महाभारत है। यह एक साधनात्मक चार्ट है। एक नाटक है। कैसे एक ऋषि ने अपने अंतःकरण में ईश्वर की प्राप्ति का अुनसंधान शुरू किया और कैसे अन्त किया? यह एक ऋषि की चार्ट है। यह इस प्रकार की है। रामायण दूसरे ऋषि की चार्ट है। देवासुर- संग्राम तीसरे ऋषि की चार्ट है। मानव राक्षस संग्राम, चौथे ऋषि की चार्ट है। सुर-असुर संग्राम, पांचवें ऋषि की चार्ट है। कृष्ण, कंस की लड़ाई एक अलग ऋषि की चार्ट है। लोग अलग-अलग रिसर्च करते हैं, डिग्री पाते हैं। लेकिन अलग-अलग अपनी थीसिस करते हैं-एक ही तरीका तो है नहीं। इसलिए रुचि के हिसाब से, अलग-अलग, अलग-अलग हो जाता है। इसलिए साधक को इतना समझना पर्याप्त होता है, कि इसको कैसे जपा जाय?

और इसका जपने का यह उद्देश्य है। और किस तरीके से इसमें जो अटैक होते हैं, जो विजातीयों के विघ्न आते हैं, उनको कैसे रोकना चाहिए। और इसमें जो सुविधाएं मिलती हैं साधक को, वो ये-ये हैं। इतना जानना चाहिए, साधक को। और करना चाहिए। फिर स्वयं उसे अनुभूतियां मिलेंगी, अनुभव होगा, कि मैं कहाँ पहुंच गया, मेरे सामने कैसा दृश्य है। पीछे क्या है, दायें क्या है, बाएं क्या है। और क्या परिवर्तन हो गया। कितना आया, कितना नहीं आया। फिर आगेबढ़ेगा फिर एक्सपीरियंस (अनुभव) आएगा फिर आगे बढ़ेगा। अब समझ में आ गया होगा। इस तरीके से ठीक रहता है। और अगर साधक करने में न जुटे और सोचे कि तर्क-वितर्क में काम हल हो जाय, तो यह नहीं हो सकता। चलना पड़ेगा।

जहाँ तक प्रश्न है थ्योरिटिकल विषय का, वह अपनी जगह तक जायेगा। केवल हमें जानकारी दे सकता है। बातों से उस विषय की गहराई का कुछ पता लग सकता है। लेकिन थ्योरिटिकल है। प्रैक्टिकल तो तभी होगा, जब हम स्वयं उस पर चलें, और उसकी अनुभूति करें। और उसका अनुशासन करें। योगानुशासन। योग का अनुशासन। योग के ऊपर अपनी सवारी रखना (आरूढ़ होना)। योग को किया जाना। यह मतलब है। करते-करते मिल जाय, यह योग की शैली है। या प्रश्न हल करते-करते मिल जाय, यह दर्शन की शैली है। ज्ञान की शैली है। जो वेदान्त कहा जाता है-वह एक अलग शैली है। सांख्य शास्त्र जिसको कहा जाता है। खाली स्पेशल एडजस्टिंग होती है, उसमें। वार्तालाप से एडजस्टिंग होती है, और उस पर फिर तुम दृढ़ हो जाओ। जो चीज़ समझ में आ जाय, सुनकर एडजस्टिंग हो जाय, और उस पर तुम मचल जाओ। दृढ़ हो जाओ। अटल हो जाओ। बस इसको वेदान्त कहते हैं। 'अहं ब्रह्मास्मि' कहते हैं-तो यह दूसरा विषय हो गया। लेकिन उसमें भी वेदांत विद्या का अधिकारी बनना पड़ता है - शम, दम, विवेक, वैराग्य के द्वारा।

हम लोगों के यहां तो अच्छा इसको समझते हैं कि योग, भक्ति और ज्ञान - तीनों को वनथर्ड-वनथर्ड लेते हैं। यह अच्छी चीज़ है। इसमें यह है कि सर्वांगीण साधक बनता है। वेदान्त को लेकर अगर तुम चलते हो, तो वेदान्त अनुभूतियों को नहीं मानता है। वेदान्त यह नहीं कहता कि भगवान में कोई आनन्द है। आनन्द है, तो अनानन्द पैदा हो जायेगा। अच्छा है, तो बुरा पैदा हो जायेगा। यह रिऐक्शन-ऐक्शन (क्रिया-प्रतिक्रिया) नियम है, दुनिया का। इसलिए पकड़ में नहीं आता। अन्योन्याश्रय दोष के वशीभूत नहीं होता, वेदान्त। इसलिए वह साधना दूसरे ढंग की होती है। और वह देहाभिमानियों के लिए कठिन भी है। ऐसा ऋषियों का मत है। और योग जो होता है। उसमें अपने शरीर के जितने अवयव हैं। जिनको पहले के

गुरू लोगों ने ऋषियों ने बताया है–उनको जाग्रत करने का, साधन मिलता है। इन्हे कमल, चक्र, कुंडलिनी कहा है। मूर्धा में क्या है, कंठकूप में क्या है–ये सब जगाने का मौका भी रहता है। ध्यान करने से, श्वासा के जप से। और साथ–साथ ज्ञान का सहारा भी लेते हैं। बिना ज्ञान के तो कोई चीज़ हो नहीं सकती। इसलिए वेदान्त का भी थोड़ा पुट रहता है। और योग ही योग और जागृति में पड़ जाएंगे, तो कहीं आनन्द आएगा, कहीं विह्वलता आएगी। कहीं चमत्कार दिखाई पड़ेगा, कहीं कुछ। तो उसमें भटकने का डर रहता है। इसलिए वहीं–लक्ष्य पर, एक धुरी (खूंटी) गाड़ दी जाती है, ज्ञान की। उसी धुरी में साधक दृढ़ रहता है। फिर यह क्रिया रूपी साधना करके, योग में जाग्रत रहता है।

जो यह कहते हैं कि भक्ति मार्ग अलग है, ज्ञान–योग अलग है। वह तो एकांगी हो गया, जो अलग है। ऐसा नहीं। यह सर्वांगीण है। अपनी–अपनी जगह सब काम करते हैं। हमारे विचार से, सबको जगह चाहिये। और जब तक सबको स्थान नहीं दिया जायगा, तब तक सार्वभौमिक अनुभूतियाँ नहीं आती हैं। इसलिए समष्टिगत अन्वय व्यतिरेक की युक्ति द्वारा चेतन का प्रतिबिम्ब प्राप्त करना है, तो इसको लेनापड़ेगा। इसलिए इसका अभ्यास ही सर्वोपरि है। अभ्यास करते रहना चाहिए। और यह नहीं हमको करना चाहिए कि अभ्यास करते समय हम चिल्लाएं, कि नहीं मिल रहा है। कि उठाये झंडा। भगवान के यहां यह नहीं करना चाहिए। जैसे कि प्रजातंत्र में लोग हल्ला मचा देते हैं। भगवान के काम में झगड़ा मचाना ठीक नहीं। यह तो हमारी गति के ऊपर निर्भर करता है। अगर ठीक गति से साधना की जाय, तो ऐसी कोई बात नहीं है कि प्राप्ति न हो। अगर हमारी गति में बाधा आती है। रुकावटें आती हैं। विक्षेप आते हैं, मल आते हैं, आवरण आते हैं। और हम उनको हटाने में सफल नहीं हो पाते, तो अच्छे साधन वाले का भी पतन हो जाता है। ज़रूरी नहीं है, कि तुम सफल हो जाओ। और यह भी ज़रूरी नहीं है कि कमजोर साधना वाले सब कमतर ही रह जायं। अगर पूर्व जन्म के पुन्य जाग्रत हो जायं, तो उसके सहारे वह भी निकल सकता है। इसलिए इसमें कुछ कहा नहीं जा सकता।

तो अलग–अलग सिस्टम है। अलग–अलग स्वभाव है। अब उस स्वभाव में हमें एक जनरल छाप छोड़नी है। हमें हरेक से कुछ ले लेना है–इससे भी लेना है, उससे भी लेना है, उससे भी लेना है, लेकिन देंगे हम अपने ढंग से। हमारा थीसिस हमारे ढंग का होगा। जैसे राम–रावण युद्ध तुलसी का है। महाभारत व्यास का है। अनेक ऋषियों का है–उनके अन्तःकरण में क्या क्रिया हुई–वह है यह। गोस्वामी जी कहते हैं कि मैं तो स्वंय अपनी अनुभूति के लिये लिख रहा हूँ, स्वयं अनुभूति के लिए। स्वांतः

सुखाय तुलसी रघुनाथ गाथा। अपने अन्तःकरण के सुख के लिए। यह जो मै लिख रहा हूँ। स्वान्तस्तमःशान्तये। मैंने सब कुछ यह पाया है। मैं ड्रामा थोड़े कर रहा हूँ, नाटक थोड़े कर रहा हूँ, दुनिया को खुश करने के लिए। वह तो स्पष्ट कहते हैं। लोग कहते हैं–समाज के लिए है। तो लोग कहते हैं। गोस्वामी जी ने तो नहीं कहा। जिसे ठीक लगता है, गोस्वामी जी की बातों को मान ले। बहुत से लोग रामायण को जला रहे हैं–नहीं ठीक लगता होगा। इसके लिए क्या कहा जाय? यह कोई कम्पलसरी (अनिवार्य) विषय नहीं है। तो इस तरीके से, अब यह क्लियर (स्पष्ट) हो गया होगा कि यह विषय व्यक्तिगत साधना का है। मानस या (अन्तःकरण) की साधना है यह। हमको–तुमको उसमें लगना है। चाहे हम श्वासा को पकड़ कर चलें, चाहे हम ध्येय को पकड़ कर चलें। चाहे हम ज्ञेय को पकड़ कर चलें। अगर ज्ञेय को पकड़ कर चलते हैं तो ज्ञेय, ध्येय हो गया। ज्ञान उसका चिंतन हो गया, और ज्ञाता मन हो गया। ज्ञेय और ज्ञाता की जानकारी ज्ञान है। बस यह त्रिपुटी है। ज्ञेय हमारा इष्ट है– ध्येय हमारा इष्ट है, और ध्याता हमारा मन है। और ध्यान हो गई जानकारी। बस इन तीनों को हमें विलुप्त कर देना है। देखते–देखते न ध्येय रह जाय, न ध्यान रह जाय, न ज्ञेय रह जाय, हम गायब हो जायं। ऐसी अवस्था हम सबकी भी आनी चाहिए।

श्वासा में लगे रहें। ऊपर जाय तो रा, नीचे जाय तो म। और मन चुप खड़ा, न कुछ सोचता है, न कुछ बोलता है। बस श्वासा को देखता है। इस तरह से देखते–देखते, देखते, जब तत्लीनता आएगी, और यह श्वासा तेल धारा सदृश्य बहेगी। तो श्वासा खड़ी हो जायेगी–एक समय आएगा। चाहे एक सेकेण्ड के लिए ही हो। चाहे एक मिनट के लिये ही हो। और जब यह श्वासा खड़ी हो जायेगी, तो तुम्हारा संसार से पत्ता कट जायेगा। तुम ग्रेविटी (गुरुत्व) पार कर जाओगे। और तुम्हारे पास्ट टेंस (भूतकाल) का जितना भी (कर्म, संस्कार) रिकार्ड है, हमेशा–हमेशा के लिए जलकर भस्म हो जायेगा।पड़ेगा। इसलिए इसका अभ्यास ही सर्वोपरि है। अभ्यास करते रहना चाहिए। और यह नहीं हमको करना चाहिए कि अभ्यास करते समय हम चिल्लाएं, कि नहीं मिल रहा है। कि उठाये झंडा। भगवान के यहां यह नहीं करना चाहिए। जैसे कि प्रजातंत्र में लोग हल्ला मचा देते हैं। भगवान के काम में झगड़ा मचाना ठीक नहीं। यह तो हमारी गति के ऊपर निर्भर करता है। अगर ठीक गति से साधना की जाय, तो ऐसी कोई बात नहीं है कि प्राप्ति न हो। अगर हमारी गति में बाधा आती है। रुकावटें आती हैं। विक्षेप आते हैं, मल आते हैं, आवरण आते हैं। और हम उनको हटाने में सफल नहीं हो पाते, तो अच्छे साधन वाले का भी पतन हो

जाता है। ज़रूरी नहीं है, कि तुम सफल हो जाओ। और यह भी ज़रूरी नहीं है कि कमजोर साधना वाले सब कमतर ही रह जायं। अगर पूर्व जन्म के पुन्य जाग्रत हो जायं, तो उसके सहारे वह भी निकल सकता है। इसलिए इसमें कुछ कहा नहीं जा सकता।

तो अलग-अलग सिस्टम है। अलग-अलग स्वभाव है। अब उस स्वभाव में हमें एक जनरल छाप छोड़नी है। हमें हरेक से कुछ ले लेना है-इससे भी लेना है, उससे भी लेना है, उससे भी लेना है, लेकिन देंगे हम अपने ढंग से। हमारा थीसिस हमारे ढंग का होगा। जैसे राम-रावण युद्ध तुलसी का है। महाभारत व्यास का है। अनेक ऋषियों का है-उनके अन्तःकरण में क्या क्रिया हुई-वह है यह। गोस्वामी जी कहते हैं कि मैं तो स्वंय अपनी अनुभूति के लिये लिख रहा हूँ, स्वयं अनुभूति के लिए। स्वांतः सुखाय तुलसी रघुनाथ गाथा। अपने अन्तःकरण के सुख के लिए। यह जो मै लिख रहा हूँ। स्वान्तस्तमःशान्तये। मैंने सब कुछ यह पाया है। मैं ड्रामा थोड़े कर रहा हूँ, नाटक थोड़े कर रहा हूँ, दुनिया को खुश करने के लिए। वह तो स्पष्ट कहते हैं। लोग कहते हैं-समाज के लिए है। तो लोग कहते हैं। गोस्वामी जी ने तो नहीं कहा। जिसे ठीक लगता है, गोस्वामी जी की बातों को मान ले। बहुत से लोग रामायण को जला रहे हैं-नहीं ठीक लगता होगा। इसके लिए क्या कहा जाय? यह कोई कम्पलसरी (अनिवार्य) विषय नहीं है। तो इस तरीके से, अब यह क्लियर (स्पष्ट) हो गया होगा कि यह विषय व्यक्तिगत साधना का है। मानस या (अन्तःकरण) की साधना है यह। हमको-तुमको उसमें लगना है। चाहे हम श्वासा को पकड़ कर चलें, चाहे हम ध्येय को पकड़ कर चलें। चाहे हम ज्ञेय को पकड़ कर चलें। अगर ज्ञेय को पकड़ कर चलते हैं तो ज्ञेय, ध्येय हो गया। ज्ञान उसका चिंतन हो गया, और ज्ञाता मन हो गया। ज्ञेय और ज्ञाता की जानकारी ज्ञान है। बस यह त्रिपुटी है। ज्ञेय हमारा इष्ट है-ध्येय हमारा इष्ट है, और ध्याता हमारा मन है। और ध्यान हो गई जानकारी। बस इन तीनों को हमें विलुप्त कर देना है। देखते-देखते न ध्येय रह जाय, न ध्यान रह जाय, न ज्ञेय रह जाय, हम गायब हो जायं। ऐसी अवस्था हम सबकी भी आनी चाहिए।

श्वासा में लगे रहें। ऊपर जाय तो रा, नीचे जाय तो म। और मन चुप खड़ा, न कुछ सोचता है, न कुछ बोलता है। बस श्वासा को देखता है। इस तरह से देखते-देखते, देखते, जब तत्लीनता आएगी, और यह श्वासा तेल धारा सदृश्य बहेगी। तो श्वासा खड़ी हो जायेगी-एक समय आएगा। चाहे एक सेकेण्ड के लिए ही हो। चाहे एक मिनट के लिये ही हो। और जब यह श्वासा खड़ी हो जायेगी, तो तुम्हारा

संसार से पत्ता कट जायेगा। तुम ग्रेविटी (गुरुत्व) पार कर जाओगे। और तुम्हारे पास्ट टेंस (भूतकाल) का जितना भी (कर्म, संस्कार) रिकार्ड है, हमेशा-हमेशा के लिए जलकर भस्म हो जायेगा।आगे रिकार्ड रह नहीं जायेगा। उसको मुक्त पुरुष कहते हैं-यह अवस्था बहुत कठिनता से मिलती है। इसमें बहुत सी बाधाएं भी आती हैं। हम इतनी मेहनत करें, परिश्रम करें, इतनी लगन करें, कि लगते-लगते मन भागे, तो मन को पकड़कर फिर लगावें, फिर भागे फिर लगावें, और हम न भागें।

'मन जाये तो जान दे, दृढ़ करि राखु शरीर'

शरीर न जाने पाये। शरीर पतित न होने पाए। मन अगर विषय की तरफ भाग भी जाए। मन बाहर चला जाय तो कोई बात नहीं, लेकिन शरीर न जाने पाये। मन का कहना, शरीर न करने पावे, तब भी गुंजाइश है। तब भी साधक बचा रह सकता है।

जैसे पंचवटी में राम, सीता और लक्ष्मण रहते हैं और वहाँ अटैक आया। देखिये मन भागा। और कहां चला गया। स्त्री के पास चला गया। सूपनखा के पास चला गया। चला गया न? चाहे सूपनखा आई-चाहे वह गए-एक ही बात है। विवेक रूपी लक्ष्मण ज्ञान रूपी राम हैं, और शक्ति रूपी सीता है। तो अगर (मन) जायेगा-तो हर्ज क्या होगा? अगर हम भगवान को छोड़कर भगवान की माया में विचरेंगे। और उपभोग करेंगे, तो हमारी शक्ति का ह्रास होगा न? तो फिर किसी तरह से विवेक काम कर गया, तो सूपनखा से तो बचा दिया। वहां तो हानि नहीं हो पायी। लेकिन बड़ी भारी हानि यह हो गई, कि उसने माया के केन्द्र (मोह) को न्योता दे दिया। रावण (मोह) को जगा दिया। और मोह के जाग जाने से शक्ति का ह्रास हुआ। सीता का हरण हुआ। तो सूपनखा प्रकृति है। मोह रावण है। क्रोध कुंभकर्ण है। आसक्ति शरीर में, लंका है। संसार समुद्र है। इसमें विषय रूपी जल है। काया रूपी किला है। और इनके ठीक अपोज़िट इसी (शरीर) को छिति जल पावक गगन समीरा-ये पांचोतत्व पंचवटी बनाते हैं। जहाँ विवेक लक्ष्मण, ज्ञान रूपी राम और शक्ति सीता रहते हैं। ये दो स्थितियां एक ही जगह हैं। हमारे ही अन्दर और यहीं झगड़ा होगा। ईर्ष्या, स्पर्धा आदि त्रिशिरा, सूपनखा, खरदूषण, बाली, सभी रहते हैं- यहाँ पर। ये सबसे आगे की लाइन में हैं। वहाँ जो फोर्स लगा हुआ है, बार्डर (सीमा) में। कोई आये तो वहीं डाउन (गिराना) करना तुम। ईर्ष्या, अगर किसी की उन्नति देखते हैं, तो हमें ईर्ष्या होती है। स्पर्धा होती है, कि हमसे आगे निकला जा रहा है। लोगों के सुख सुन कर आग लग जाती है। लोगों के दुख सुनकर, खुशी होती है। बड़ा आनन्द आता है। ये

ऐसे (राक्षस) सब पड़े हुए हैं, हमारे ही अन्दर यहाँ। ये सब बाहर नहीं हैं- बाहर हैं भी, तो हमसे क्या लेना-देना। यह दुनिया बड़ी लम्बी-चौड़ी है। इसमें क्या-क्या नहीं है। इससे तुम्हें कुछ मतलब है (क्या)? न इससे तुम्हें कभी टच होना है, न इससे तुम्हारा कोई मतलब है-तो आखिर आदमी बाहर क्यों अर्थ लगाता है? ये तो क्रियायें हैं, हरकत हो रही है। पहले विचार, फिर आपकी हरकत। हरकत के पहले वही वाणी में आ जाती है-फिर कर्तव्य (क्रिया) में परिणत हो जाती है। चाहे लड़ाई ले लो-चाहे प्रेम ले लो, चाहे झगड़ा ले लो, चाहे आनन्द ले लो। चाहे कुछ भी ले लो। अन्दर की बात है, जो बाहर दिखती है। तो अन्दर की बात तो हम करते नहीं, और बस कहते हैं- दशरथ नाम का एक राजा था अयोध्या में। त्रेता युग में हुआ था, राम का अवतार वहां। तब तो राम एक देश और काल का हो जाएगा। लेकिन ऐसा नहीं। यह सब दुनिया का प्रभाव है। जब हम दुनिया में पैदा हो जाते हैं, तो माता-पिता के आनुवांशिक गुण आ जाते हैं, वही संस्कार बनने लगते हैं। अनुवांशिक होते हैं। और वही ढंग हम मानने लग जाते हैं। जो भी किस्सा कहानी सुनने को मिली, उसको बाहर की दुनिया कीतरह ले लेते हैं-ऐसे स्त्री रही होगी-ऐसे यह रहा होगा-बस। चाहे वह अंतर्जगत की बात हो, हम उसी ढंग से लेते रहेंगे। ऐसे नहीं।

अब जब हम अन्तर्जगत की पढ़ाई में लग गये, एडमिट (प्रविष्ट) हो गये, तो हमें अंतर्जगत से अर्थ लेना चाहिए। और हम बाहर जगत ही पढ़ाई करते हैं, तो बाहर का लेना चाहिए। आध्यात्मिक दृष्टि से चलना है, तो तुम्हें आत्मा की तरफ चलना पड़ेगा। बारीक चलना पड़ेगा, वही अर्थ लेने पड़ेंगे। क्योंकि अन्दर की ही तो बुराई है-जो बाहर झगड़ा होता है, वह पहले अन्दर ही (विचार) पैदा होता है। पहले विचार बनता है, फिर क्रिया होती है-हम पहले बता चुके हैं। नाभिकमल में संकल्प उठता है-बीज रूप में होता है। हृदय में आकर अंकुरित हो जाता है, फिर कंठ में आकर वाणी के द्वारा स्फुरित होता है और क्रिया के रूप में सामने आ जाता है। चाहे झगड़ा करो। चाहे प्रेम करो। कुछ भी करो। दुनिया कर रही है। पहाड़ बना लो। नदी बना लो, मकान बना लो। सृष्टि बना लो। अब ये तो तुम्हारे करने से होगा। उसका कायदा बन गया। उसका फारमूला बन गया। उसको कौन रोकेगा?

मन की गति अगर बाहर जाती है तो हम चूक गए। और इसका कारण भी हम बता देते हैं, कि तुम अपने अंतःकरण मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार को सोचने के लिए मना नहीं कर सकते-वह तो सोचेगा। चाहे तो विजातीय क्षेत्र में विचरेगा या सजातीय क्षेत्र में विचरेगा। मन का काम हैं संकल्प करना, चित्त का काम है चिंतवन करना, बुद्धि का काम है विचार करना, अहंकार का काम है अहंकार करना। चाहे माया के

क्षेत्र में उससे क्रिया कराओ, चाहे भगवान के क्षेत्र में कराओ। एक सजातीय क्षेत्र है, दूसरा विजातीय क्षेत्र है। एक विद्या क्षेत्र है, दूसरा अविद्या क्षेत्र है। अब उसे बदलना है। बदलना है, तो फिर उसके लिए दुनिया अलग से बनानी पड़ेगी। अगर बाहर भी कोई घटना हुई, तो हमें नहीं मानना है। उसे अगर मानेंगे, तो हमें जाना पड़ेगा उसमें। अगर जायेंगे, तो सोचना पड़ेगा उसे। अगर सोचेंगे तो कल्पना करना पड़ेगा। कल्पना करेंगे, तो उसमें भाग लेना पड़ेगा। भाग लेंगे तो नरक में चले गए। इस तरीके से, अगर तुम्हारे सामने कोई कहानी, कोई नाटक ऐसा आ जाता है, ट्रांसफार्म कर दो, ईश्वर में ले आओ। यह माया वाली न रह जाय। इन नेत्रों वाली न रह जाय। इन नेत्रों से तो मकान दिखाई पड़ेगा, जल दिखाई पड़ेगा, हवा दिखाई पड़ेगी और ज्ञान-नेत्र खोल दो, तो उससे ईश्वर की चीज़ दिखाई पड़ेगी। सजातीय दिखाई पड़ेगी। तो फिर, इसका अपने ज्ञान (नालेज) से एक ऐसा रूप बनाओ कि इसका रूपांतर कर लो। यह होते हुए भी न रह जाय और उस विज्ञान में विचरण करो। विद्या के क्षेत्र में, भगवान के क्षेत्र में, और उसी का सोचो, विचार करो। तो देखो तुम रहते हुए संसार में, संसार से अलग हो सकते हो। इसलिए हम इसको ऐसा कहते हैं। और अगर तुम ध्यान में भगवान के क्षेत्र में पहुंच गए और फिर निकले ध्यान से। तो तुम बाप को बाप मानोगे, जात को जात मानोगे, देश को देश मानोगे, भाषा को भाषा मानोगे तो फिर झगड़ा होगा तुम्हारे दिमाग में। इसलिए इनको हल कर लिया जाय-बाहरी वालों को। तो राहत मिलेगी, चलने में आराम मिलेगा। इसलिए यह सुविधाजनक ज्ञान है। महात्माओं का ज्ञान है। महात्मा लोग उसी दुनिया में विचरते हैं। इसलिए गीता में बड़े-बड़े शास्त्रों में स्पष्ट कर दिया है-

'या निशा सर्वभूतानाम् तस्यां जागर्ति संयमी।'

जिसमें सब लोग सोते हैं, उसमें संयम करने वाला (योगी) जागता है। और जिसमें संयम करने वाला सोता है, उसमें दुनिया जागती है। उलटा हो गया। तो उसका अर्थ क्या करोगे तुम? यही तो अर्थ है, कि हम देखते हुए भी मकान को नहीं देख रहे हैं। हम तो मकान को माया जानते हैं। यह है ही नहीं। हम तो मकान को मन जानते हैं-मकान को मन ने ही निकाला। मन में बनाने का विचार आया होगा, फिर नक्शा बना होगा। फिर ये हुआ वो हुआ। इसलिए अगर ऐसा सुविधाजनक साधना में सहायक ज्ञान, तुम्हारे पास हो जाता है, तो इसमें हर्ज ही क्या है? इसमें तो तुम्हें लाभ ही लाभ है। फ्यूचर (भविष्य) में भी लाभ है, प्रजेन्ट (प्रजेन्ट) में भी लाभ है। तो इस तरीके से सोचना चाहिए। प्रश्न यह है कि हम जितना लगेंगे भगवान में, उसके नाम में ज्यों-ज्यों हम लगते चले जायेंगे, तो फिर

वह अपने से रास्ता बताना शुरू कर देगा। यह तरीका सर्वोच्च माना जायेगा। जब हम लगते हैं, और नहीं लग पा रहे हैं, फिर जो उस रास्ते से गया है, उससे पूछते हैं। तो जो वह (बाहर) थोड़ा-थोड़ा बता देते हैं, वह थ्योरिटिकल होगा। और फिर तुम जब प्रैक्टिकल करोगे, तो वह थ्योरी ठीक नहीं बैठेगी। उसमें वैसा प्रभाव नहीं रहेगा। इसलिए प्रैक्टिकल विषय, प्रैक्टिकल ही क्षेत्र में होना चाहिए। उसका प्रभाव ज़्यादा पड़ेगा। जैसे कोई कीमती चीज़ हमारे पास आ रही है। अब किसी ने बता दिया कि करोड़ों की चीज़ है, वह आपके पास आ रही है। अच्छा अब वहां से चल दी है। अब तीसरे ने बताया, कि वह इतनी बड़ी है, उसमें इतनी चमक है, फिर ऐसी है, फिर ऐसी है। तो उसके मिलने का जो आनंद है-उसमें थोड़ा अंतर आ जायगा। पहले से उसका (कल्पना में आनंद का) उपभोग करने लगे। दस पांच पैसा तो कर ही ले जायेंगे। तो उतना (आनन्द) घट ही जायेगा। वह अच्छा नहीं माना जाता। हमारे ऊपर सम्पूर्ण, सौ पैसा का असर एकबारगी होना चाहिए। जब वह मिले। छाप छूट जाय, हमारे ऊपर। दबाव आ जाय, उसका। फिर हम हटें न उससे। फिर ऐसा संबंध हो जाय, कि वह हमसे न हटे और हम उससे न हटें।

अगर हम कोई साधना करेंगे और कुछ हमें चमत्कार दिखाई पड़ता चला जाय तो हमें अट्रैक्शन (आकर्षण) बढ़ता चला जायगा। कुछ दूर तक यह भी माना जायगा। कि चमत्कार आना चाहिए। तो फिर दृढ़ विश्वास आएगा। लेकिन कुछ देख करके, उसके साथ-साथ फिर अंधविश्वास भी लेना पड़ता है। इसमें दोनों बातें आती हैं। ज़रूरत पड़ने पर सभी औजार इस्तेमाल किए जाते हैं। अब यह साधक विशेष के ऊपर है, कि किस तरीके से उसकी गतिविधि ठीक होगी। किसी साधक को, एक ही साधन, कई बार लेना पड़ता है। और इसमें परीक्षाएं बहुत आती हैं-बाधांए आती हैं-दिक्कतें आती हैं। तो दिक्कतों से साधक खड़े रह जाते हैं-बुद्धि काम नहीं करती। संशय आ जाते हैं, मल आ जाते हैं विक्षेप आ जाते हैं। विकार आ जाते हैं। बीमारी आ जाती है। योग करने में बीमारी बहुत आती है यह निश्चित आती है।

योग करत, रोग बढ़त।

इसमें यह नियम होता है। लेकिन साधक इससे डरते तो हैं नहीं। क्योंकि वे मानते नहीं कि यह हमको आती हैं। बीमारी आती है-बाधा आती है, तो हमको नहीं यह सोचना है। बीमारी आए तो हमको सौभाग्य सराहना चाहिए, कि हमको साधन के बिना आधा पाप कट गया। हाँ, बशर्ते एक चीज़ का ध्यान रखना चाहिए कि हम परेशानी में कहीं फेल न हो जायं। दृढ़तापूर्वक डटे रहना चाहिए। दिक्कत ज़रूरहोती

है। प्रहलाद को दिक्कत हुई, ध्रुव को दिक्कत हुई, मीरा को हुई। लेकिन दिक्कत के बाद शान्ति आती है। परेशानी आती है–लेकिन परेशानी को हम परेशानी नहीं मानते हैं। हमतो उसमें इम्तहान मानते हैं, कि हमारी परीक्षा शुरू हो गयी। हमें तो खुश होना चाहिए, हमें तो इस योग्य समझ लिया गया कि हमारी परीक्षा होने लगी। इसलिए अच्छे साधक दिक्कतों से हार नहीं मानते।

जब तक साधन भजन की प्रक्रिया को गहराई से समझा नहीं जायगा, तो उसे करने में कैसे लिया जायगा? ध्याता क्या है, ध्यानक्या है, ध्येय क्या है? यह त्रिपुटी कैसे बनती है? शुरू में क्या किया जाय? मन को कैसे रोका जाता है– यह सब प्रौक्टिकल बातें हैं। इसे करना पडता है। ऐसे तो काम चलेगा नहीं, कि सुन लिया और काम हो गया। अगर कोई लड़का 10वीं क्लास में पढ़ रहा है, और कोई कहे कि इस लड़के को बैरिस्टर बनाना है, तो कहने भर से क्या वह बैरिस्टर बन जायगा। अभी लम्बी पढ़ाई करना होगा बैरिस्टरी पास करेगा, तब बनेगा। तो संसार की पढ़ाई में जब इतनी मेहनत है, कोई ऊंची डिग्री लेने में तो अन्तर्जगत फकीरी पार्लियामेंट की डिग्री तो महान मुश्किल है। उसकी भी पढ़ाई का एक कोर्स है। साधना का विषय क्लिष्ट है, और इतने क्लिष्ट विषय की बातों को इतनी आसानी से कह बता डालते हैं लोग। सुनने को सरल लगती हैं, लेकिन करने में कठिन हैं। इन बातों के मर्म को समझना चाहिए और प्रक्रिया से गुजरे हुए गुरुओं से, उस पर अमल करना सीखना चाहिए।

जप की क्या नियमावली है? कहां से कैसे शुरू करें। कितने तरीके से जप होता है। किस स्तर के जप की क्या विधि है। क्या उसमें दिक्कतें हैं। कैसे, कहां, क्या होता है– नाम की साधना में। नाम के बाद रूप है। रूप में ध्यान का विषय आएगा। स्थूल का ध्यान कैसे किया जाय, सूक्ष्म में ध्यान कैसे होता है,कारण स्तर में ध्यान का स्वरूप क्या बन जाता है। फिर कारणातीत में कैसे क्या होता है, यह सब सांगोपांग समझकर किया जाय,तब तो कुछ हो सकता है। केवल बनावटी बातों से इस लाइन में काम नहीं चलता।

साधना का मतलब है, कि हमारा मन जो यहां वहां विषयों में दौड़ रहा है,उसे एक जगह–इष्ट के स्वरूप में–रोक दें। हम नहीं चाहते कि हमारा मन विषय में जाय, लेकिन वह चला जाता है। हम नहीं चाहते कि हमारा मन लोभ में जाय, लेकिन चला जाता है। तो मन हमारे ऊपर हावी बना हुआ है। हमें उसके ऊपर हावी होना है। इसलिए मन को संयमित करना है। अपने नियंत्रण में रखना है, नियंत्रण में

रखने के लिए हमें मन को साधनारत करना है। फिर मन उसमें लगते-लगते अपने अनुकूल हो जाएगा। जो कहा जायगा, करने लगेगा बदमाश घोड़े को शुरू में कंट्रोल किया जाता है, तो सिखाने वाले को कितना परेशान करता है- वह घोड़ा। कभी एकदम तेजी से भाग चलेगा, कभी लेट जाएगा, कई तरह से परेशान करेगा। लेकिन सिखाते-सिखाते काबू में आ जाएगा, तो फिर पैर की एंड़ लगाते जाओ। उसी के इसारे से चलेगा-जहां चाहो वहाँ पहुँचा देगा। ऐसे ही अपने मन-इंद्रियों को नियंत्रित करना पड़ता है। और इस तरह नहीं, कि कह दिया मन को मार दो, इंद्रियों को मार दो। तो ऐसे मरते नहीं हैं ये। इनका ट्रांसफार्म किया जाता है। इन पर नियंत्रण किया जाता है। इंद्रियां ट्रांसफार्म होकर ऋद्धि सिद्धि बन जाती हैं। मन जो अभी सर्प है, बदलकर गरुड़ बन जाता है। सर्प बना रहेगा तो विषय रूपी विष देगा, गरुड़ बन जाएगा तो विष्णु का वाहन बन जायगा। आत्मारूपी अमृत देने वाला बन जाएगा। तोबस इन्ही को बदलना है। इसी के लिए यहा साधना बताई जाती है, इसमें दक्ष होना है।

जब मन अपनी पूरी चालाकी करके थक जाता है, तब वह रुक जाता है। जब ईश्वर में स्थिर हो जाता है, तो राजा बन जाता है। ईश्वरीय क्षेत्र का। और अगर मन को नहीं रोका जायगा, तो यह माया के क्षेत्र में राजा बना है। लेकिन यह असत्य है-माया। इसलिए इसे छोड़कर जब ईश्वर क्षेत्र का राजा हो जाता है मन, तब सब कुछ ठीक हो जाता है। ईश्वर सत्य है, शुद्ध है, बुद्ध है, अजन्मा है, अविनाशी है, अलख-अगोचर है। उसे धारण करके कृतार्थ हो जाता है। संसार से मर जाता है ईश्वर में पैदा हो जाता है। तो यह सब खूब बुद्धि लगाकर समझने की बातें हैं। कबीर कहते हैं -

हमसे पहले हमर माई मरि गई, पाछे जनम हमार।

मायारूपी माई मर जाती है, तब ईश्वर में जन्म होता है। मन को जब श्वासा के जप में लगा दिया जाता है तो धीरे धीरे रुकने लगता है। जब साधक की प्रगति भजन में होती है, कुंडलिनी जाग्रत हो जाती है, तो मन को अन्दर ही रस मिलने लगता है। और एक दिन स्थिर हो जाता है। तब उसमें क्षमता आ जाती है। जो कल्पना करेगा सब हो जाएगा। मूल बात है मन को बदलना। अभी जवानी के नशे में पता नहीं चलता। लेकिन यह जवानी बनी तो नहीं रहेगी। बुढ़ापा आएगा तो लड़का, स्त्री, नाती-पोते, धन-दौलत, मित्र सब एक-एक करके छूटने लगते हैं। कुछ दिन में मर जाते हैं-तो शरीर भी साथ नहीं जाता। इस दुनिया में अकेले आना,

अकेले ही जाना होता है। यह सोचना चाहिए कि वह कौन है,जो हमारे साथ हर समय है। आते में भी था,जाते में भी रहेगा। उस आत्मा को–उस परमात्मा को, अभी से पकड़ लो। धीरे–धीरे, दो मिनट, दस मिनट, बीस मिनट भगवान का नाम लेना अभी से शुरू करना चाहिए। नहीं तो फिर –

का बरषा जब कृषी सुखाने।

समय चूक पुनि का पछताने।।

इसलिए समय रहते इसमे लगना पडेगा। और यम, नियम, आसन, प्राणायाम सबको लेना पड़ेगा।

प्राणायाम का योग में बहुत महत्व है। प्राणायाम के तीन हिस्से हैं– पूरक, कुम्भक और रेचक। एक ईश्वर को सब में देखना यह पूरक है। और एक ईश्वर में दृढ़तापूर्वक अपनी आस्था बनाना यह कुंभक है। और प्रपंच का निषेध रेचक है। यह वेदान्त का प्राणायाम है। इस तरह से साधक की योग्यता के अनुसार कई श्रेणी का प्राणायाम होता है। फिर साधन की क्रिया के बीच में, प्राण को अपान में, अपान को प्राण में हवन करना, यह श्वास की क्रिया है। वह दूसरा विषय है। तो यह साधक को अपनी एडजस्टिंग समझना चाहिए कि मेरी कितनी योग्यता है, और मैं किस प्राणायाम के लायक हूँ। कौन प्राणायाम मेरे लिए ठीक रहेगा। उसे ले लेना चाहिए। और इनका सबका उद्देश्य एक ही है। यह प्राणायाम जो पूरक, कुंभक, रेचक में श्वांसा खींची जाती है, सबसे निम्न श्रेणी का, शुरू शुरू का स्थूल स्तर का है। यह इसलिए किया जाता है, कि अपनी श्वासा के सुविधापूर्वक आने जाने का नियम बन जाय। इसका एक विधान है। उसी के अनुसार नित्य नियम से प्राणायाम करके श्वास को संयमित किया जाता है। इससे श्वास–जप में सहयोग मिलता है। प्राण और अपान में हवन का आशय, यही श्वास काजप है। प्राण में जाय तो रा, अपान में म। इस तरह से मूलाधार में इसका हवन होता रहना चाहिए। इसको लोग पश्यंती वाणी का जाप भी कहते हैं। इसमें साधक को लगा रहना चाहिए।

साधक का काम है कि खूब भजन करे। लेकिन यह ऐसे नहीं होता है। यह साधन भजन तो तब होता है, जब अनपेक्ष हो जाय, साधक के अंतःकरण में कोई कल्पना (इच्छा–वासना) न रहे। इच्छा न हो। आरम्भ न हो। अनपेक्ष हो जाए–

'अनारम्भ अनिकेत अमानी'

अन्तःकरण में आरम्भ या संकल्प न हो। और अनिकेत–मन में अगर कोई संकल्प आता है, तो उसे अंतःकरण में रुकना नहीं चाहिए–अनिकेत का अर्थ यह होता

है कि कोई संकल्प हमारे अन्दर अपना घर न बना पावे। उसमें जमावट नहीं रहना चाहिए। उसमें स्थायित्व न रहे। सोचा गया, और वह फिर निष्क्रिय हो जाय। परिणाम रहित हो जाय। यह कब होगा–जब हमारी पूज्य के प्रति आस्था हो जाय। सही विश्वास युक्त आस्था हो जाय। और जब हम पूज्य के स्वरूप में स्थायित्व पा लें। ऐसी जब दृढ़ता आ जाती है, तब उसको पूजा कहा जाता है। वह तब आयेगी जब हमारी कल्पनाएं (इच्छाएं) खतम हो जायं। और जब हमारी इच्छाएं चालू हैं–यह दरबार चालू है। मेरा यह काम हो जाता, मेरा वह काम हो जाता। मैं ऐसा हो जाता–मैं वेसा हो जाता। तो की हुई तुम्हारी पूजा से पुण्य की जो कमाई हो रही है,वह कमाई खर्च होती जाती है। बच नहीं पाती। पूजा वह ठीक है जो कि इच्छा रहित हो। कर्म करो, साधना करो और परिणाम की कामना न रखो। अनपेक्ष साधना। इसको कहते हैं, समर्पण–साधना। 'मामेकं शरणं व्रज' – गीता में इसका बड़ा महत्व बताया गया है। कई साधनाओं के तरीके कृष्ण ने बताए, अर्जुन को। हर अध्याय में अलग–अलग। कि हे अर्जुन! यह भी तरीका है, यह भी तरीका है। यह भी रास्ता है–ये सब वहीं पहुँचते हैं। किसी एक को अपना लो, तुम्हारा कल्याण हो जायेगा। अर्जुन, प्रत्येक में अपने को कमजोर पाता चला गया। तो अन्त में भगवान ने यही कहा, कि तुम कुछ न करो–तुम अपने को मुझ में समर्पण कर दो। फिर मेरा जो काम है, मैं करूंगा। बस! तुम शरीर, इंद्रियों सहित अपने को, मुझे समर्पित कर दो। कृष्ण एक गुरु का स्थान सुशोभित करता है। अर्जुन–एक शिष्य का स्थान सुशोभित करता है। तो इस तरीके से गुरू साधक की नाना प्रकार की इच्छाओं का, दमन ही कराते हैं। और जब इच्छाओं का दमन हो गया, तो उस भूमिका के ऊपर साधना रूपी वृक्ष जमता है, और उसमें फिर ईश्वर रूपी फल (परिणाम) आता है। ईश्वर रूपी फल लगता है। अगर तुम इच्छाओं का दमन नहीं कर सकते। कल्पनाओं को खतम नहीं कर सकते। यह इल्म अगर तुमको नहीं मिला है, तो तुम्हारी साधना भी व्यर्थ होगी। साधना सफलीभूत नहीं हो सकती। साधना करोगे तो–छः महीने का अनुष्ठान करोगे, फिर साल भर का करोगे, फिर बारह साल का करोगे, और उसके पीछे कुछ न कुछ परिणाम लेने की, फल की कामना रखोगे तो ये सब साधनाएं–भजन नहीं कही जातीं। भजन उसको कहते हैं जो अपेक्षा–रहित हो! जो देश और काल अबाधित हो। जो हमेशा के लिये लिमिट पार कर गया हो। ऐसी कोई कामना न हो कि इस काम के लिए करते हैं। हमको इसमें इनर्जी वेस्ट (वेस्ट) नहीं करनी है। तब हमको भजन का कुछ पता चलेगा।

हरिः ओम